International Indexed & Referred Research Journal, March, 2012. ISSN- 0975-3486, RNI-RAJBIL 2009/30097;VoL.III *ISSUE-30

शोध पत्र- हिन्दी

प्रेमचन्द के उपन्यासों में राष्ट्रीय चेतना

* डॉ. (श्रीमती) अर्चना सिंह

* विभागध्यक्ष हिन्दी, कमला नेहरू महाविद्यालय, कोरबा (छ.ग)

March, 2012

उपन्यासकार मुंशी प्रेमचन्द का स्थान हिन्दी साहित्य में एक ऐतिहासिक महत्व रखता है । समकालीन सामाजिक, सॉस्कृतिक एवं राजनैतक आन्दोलनों की उन्होंने अपने उपन्यासों द्वारा न केवल अगुवाई ही की, बल्कि नये भारत के निर्माण की दिशा का दिग्दर्शन भी उनकी रचनाओं द्वारा हुआ । उन्होंने अपनी लेखनी द्वारा हिन्दी उपन्यास साहित्य को गम्भीर साहित्य के रूप में न केवल प्रतिष्ठित ही किया बल्कि अपनी अद्भुत शैली द्वारा हिन्दी उपन्यास के पाठकों की रूचियों का संस्कार कर असंख्य हिन्दी पाठकों का निर्माण भी किया ।

प्रेमचन्द साहित्य में कलम के सिपाही थे और वास्तविक जीवन में गांधीवाद के सिपाही, गांधीवाद के सत्य, अहिंसा, असहयोग, सत्याग्रह, स्वदेशी के प्रयोग, अंग्रेजी शासक वर्ग के सामने अभिनव चुनौती लेकर खड़े थे। अंग्रेज शासक वर्ग पूंजीवाद के भारतीय संस्करण ''जमींदारी'' पर जी रहा था, जी ही नही रहा था, भारतीय ''नर'' को ''कंकाल'' में परिणित कर रहा था। सामाजिक आर्थिक और नैतिक धरातल पर ''आदमी टूट रहा था'' किसान घुट–घुट कर मर रहा था। किन्तु मरते–मरते भी भारत की सामाजिक चेतना, ''ब्राम्हण–बनिया, धोबी–चमार के भेद को भुला नहीं पा रही थी, ''समाज के दहकते पत्थर पर तिल–तिल कर जलती हुई भारतीय विधवा को संस्कारों से छुटकारा नहीं देना चाहती थी, नारी के साथ जुड़े हुए ''समस्या शब्द को 'सुधार' की रबर द्वारा समाधान में परिवर्तित करने की उत्सुकता पर सम्मति की मुहर नहीं लगा पा रही थी।''

प्रेमचन्द एक प्रतिबध्द उपन्यासकार थे, पर उनकी प्रतिबध्दता आयातित नहीं बल्कि स्वदेशी थी और अपने संपूर्ण लेखकीय जीवन में वे युगीन संवेदनाओं के साथ जुड़े रहे। वे युग की नाड़ी पहचानने वाले साहित्यकार थे और उन्होंने उसके स्पंदन के साथ निज की आत्मानुभूति को केवल जोड़ा ही नहीं था, बल्कि उसका आत्म–साक्षात्कार भी किया था। उनका और उनके आपसपास का भोगा हुआ सत्य ही कला एवं कल्पना के बल पर उपन्यासों में व्याख्यायित हुआ है। वे युग के सच्चे सहयात्री थे और ऑख खोलकर यात्रा कर रहे थे जिससे यात्रा में आने वाली सभी समस्याओं से उनका सहज ही परिचय हो गया था। ''अपने अनुभव की विशालता और दूरगामी अन्तर्दृष्टि के कारण ही प्रेमचन्द अपने उपन्यासों को विषयगत विविधता एवं जीवंत दृष्टि प्रदान कर सके हैं, जिसके कारण उनकी रचनाओं में उत्तरोत्तर परिवर्तन लक्षित होता है।''

हिन्दी भाषा जनता में संपूर्ण सामाजिक चेतना के उदय एवं विकास का कार्य मुख्यतः प्रेमचन्द के उपन्यासों के माध्यम से हुआ और यही क्षेत्र आगे चलकर राष्ट्रीय आन्दोलन का केन्द्र बिन्दु बना। पुलिस के आतंक से भयभीत न होने, कारागार की भयंकरता से न डरने, लाठी–डण्डा और गोली तक खा लेने की क्षमता अर्जित करने की स्थिति तक प्रेमचन्द के उपन्यासों ने जनमानस को पहुंचाया। अतः उनके उपन्यासों में राष्ट्रीय आन्दोलन की सही सीधी–टेढ़ी रेखाएं देखी जा सकती है। साहित्य को सामंती कटघरे से निकाल कर प्रेमचन्द ने उसे जनता का विषय बनाया। उन्होंने साहित्य के सिंहासन से देवी, देवनताओं तथा सम्राट एवं साम्राज्ञियों को उतार कर समाज की पतित कही जाने वाली बहनों, भिखारियों, किसानों एवं साधारण कामगार स्त्रियों को प्रतिष्ठित किया। शहर गांव की ओर बढ़े और गांव ने शहर का स्वागत किया। इस प्रकार समूचा राष्ट्र चट्टान की भॉति स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए खड़ा हो गया।

अभी तक स्वराज्य के लिए जिस मार्ग का अनुसरण किया गया था उसकी जमीन नरम थी, अतः भारतीय चेतना के सामने प्रश्न था कि इस पंथ को पक्का बनाने के लिए किस कोटि की सामग्री का उपयोग किया जाये ? गांधी अफ्रीका से अपने अनुभवों और प्रयोगों की जो सामग्री लाये थे, वह भारत की मिट्टी के अनुकूल थी, अतः राष्ट्र ने उसी का उपयोग करते हुए अपने स्वातंत्र पथ को पक्का बनाना प्रारंभ किया, प्रेमचन्द ने अपनी लेखनी द्वारा जन साधारण को उस पथ पर चलना सिखाया, उबड़–खाबड़ मार्ग को गॉधी ने साफ किया और प्रेमचन्द ने उसे ''सपाट–समतल'' बना दिया।

गांधी जी ने राजनीति के क्षेत्र में राष्ट्रीयता के स्तर पर जिस व्यक्ति–चेतना को उभारा, उसी का प्रेमचन्द ने साहित्य के क्षेत्र मे समाज के स्तर पर उन्नयन किया, ''घुलाया दोनों ने ''स्व'' को ''पर'' के लिए, दोनों ने अपने व्यक्तित्व को समाज–राष्ट्र और उससे भी परे मानवता की बेदी पर बलि कर दिया, ''शहीद दोनों हुए किन्तु गांधी शहीद हुए राजनीतिक विषमता की गोलियां खाकर और प्रेमचन्द शहीद हुए सामाजिक विषमता का विषपान करके।'' प्रेमचन्द ने हिन्दी साहित्य को वरदान, प्रतिज्ञा, सेवासदन, प्रेमाश्रम, निर्मला, कायाकल्प, गबन, कर्मभूमि, गोदान, रंगभूमि और मंगल सूत्र (अपूर्ण) उपन्यास दिए। इन उपन्यासों में उन्होंने तत्कालीन भारतीय जन जीवन से सम्बध्द अनेक समस्याएं उठाई हैं। ये समस्याएं केवल हिन्दी क्षेत्र तक सीमति नहीं थी, समस्त भारतीय जन मानस उससे आकांता था। ''वरदान'' में प्रेम और अनमेल विवाह देवी के वरदान से पुत्र प्राप्ति जैसी अंध विश्वास वृत्ति और प्रेम के आदर्श रूप को

प्रतिष्ठित करने की प्रेमचन्द ने चेष्टा की है ।''प्रतिज्ञा'' हिन्दी समाज की सर्वाधिक गंभीर समस्या ''विधवा'' की विपन्नावस्था का चित्रण है । प्रेमचन्द ''विधवाश्रम'' में उसका समाधान खोजना चाहते हैं। किन्तु वहां उन्हें समस्या में सुधार मिलता है, समाधान नहीं। ''सेवासदन'' में वेश्या जीवन को सामाजिक संदर्भ में देखा गया है। ''प्रेमाश्रम में जमींदार और किसान के बीच आर्थिक असंतुलन की कहानी है। प्रेमा (प्रतिज्ञा) में चित्रित मध्यमवर्गीय समाज की दहेज प्रथा और अनमेल विवाह ''निर्मला'' की समस्या भी है।

''रंग भूमि'' औद्योगिक शोषण, राजनैतिक परतंत्रता और संघर्ष से ओतप्रोत भारतीय जीवन के अनेक पक्षों पर दृष्टिपात करता है । बढ़ती हुई पूँजीवादी सभ्यता के संपर्क में आने पर ग्राम जीवन की सरल संतोषमयता के अस्त–व्यस्त होने का चित्रण उपन्यासकार ने बड़ी कुशलता से किया है। ''कायाकल्प'' रूढ़ियों, साम्प्रदायिक दंगों, जमींदारी शोषण और किसान आन्दोलनों की कहानी है। वह शासन चक्र जिसमें भोजन के बदले हंटर मिलते थे, वह नारी जो कभी पुरूषों का खिलौना, कभी उनके पांवकी जूती समझी गयी और वह धर्म जिसमें मुल्ले, मौलवी और पंडित पुजारी जनता को भड़काकर अलग हो जाते थे ''कायाकल्प'' में अट्टाहास करते सुनाई पड़ते हैं। ''कर्मभूमि'' राष्ट्रीय आन्दोलन की भूमिका पर लिखा गया था। सन 1929 की आर्थिक मंदी से उत्पन्न परिस्थितियां, लगान बंद आन्दोलन और उस संदर्भ में सरकारी दमन नीति की क्रूरता तथ नृशंसता का नग्न नृत्य दिखाना इस उपन्यास का लक्ष्य था। ''गबन'' उपन्यास के माध्यम से प्रेमचन्द जी ने मध्यमवर्गीय जीवन की असंगतियों और मनोवैज्ञानिक सत्यों का बड़ा तीखा बोध दिया है। साथ ही ''गबन'' में रमानाथ के माध्यम से पुरातन, नवीन की संधि पर खड़ी, भारत की नयी पीढ़ी की भौतिक सुखोन्मुख व्यक्ति चेतना में आन्दोलित, आत्म प्रवंचकता से उत्पन्न परिस्थितियों और परिस्थितियों से उदबुध्द आत्म प्रवंचनाओं का सुन्दर संघर्ष दिखाया गया है।''

''गोदान'' में प्रेमचन्द ने यथार्थ को अनेक रूपों में पाया, पाया और पहचाना, और पहचनाने के साथ प्रश्न चिन्ह भी लगा दिया! उन्होंने अनुभव किया– ''यह सच है कि किसानों को चूसने वाली अनेक शोषक शक्तियां अमरबेल की तरह उनसे लिपटी है, मगर उनकी धर्मभीरूता या आपसी स्वार्थ भावना भी इसके लिए कम जिम्मेदार नहीं हैं।'' उनकी संवेदना ने स्वीकार किया कि सामाजिक विषमता का कारण आर्थिक विषमता है। वे इस गहन सत्य को पहचान गये कि ''सामाजिक संबंधों के निर्माण और नियंत्रण में धर्म का हाथ नहीं रहा, यद्यपि वह फूटे ढोल की तरह अब भी गले पड़ा है।''

अतः इनके उपन्यासों में ग्रामीण भारत अपनी सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक एवं साम्प्रदायिक विषमताओं के साथ उभरकर सामने आया है । सत् के प्रति श्रध्दा और असत् के प्रति घृणाभाव उत्पन्न करने की दृष्टि प्रेमचंद के उपन्यासों में सर्वत्र विद्यमान है। उन्होंने अपने उपन्यास के पात्रों को जो मानवीय मूल्य प्रदान किए आगे चलकर उन्हीं मूल्यों के द्वारा नवीन भारत की कल्पना को साकार करने में सहायता मिली ।

संदर्भ ग्रंथ

1. दुबे, डॉ. पुरूषोत्तम, व्यक्ति चेतना और स्वातंत्रयोत्तर हिन्दी उपन्यास, अनुपमा प्रकाशन, बम्बई, 1973, पृष्ठ–1662. सिंह, डॉ. त्रिभुवन एवं सिंह, डॉ. विजय बहादुर, साहित्यिक निबंध, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2008, पृष्ठ– 103. वही पृष्ठ – 1064. वही पृष्ठ – 1065. दुबे, डॉ. पुरूषोत्तम, व्यक्ति चेतना और स्वातंत्रयोत्तर हिन्दी उपन्यास, अनुपमा प्रकाशन, बम्बई, 1973, – पृष्ठ– 1676. मिश्र, डॉ. रामदरश, हिन्दी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1982, पृष्ठ – 477. वही पृष्ठ – 578. दुबे, डॉ. पुरूषोत्तम, आज का हिन्दी उपन्यास, अनुपमा प्रकाशन, बम्बई, 1973, पृष्ठ – 99. मिश्र, डॉ. रामदरश, हिन्दी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1982, पृष्ठ 53